भूमि अधिग्रहण की सही दिशा

सोमवार, 13 अप्रैल 2015

प्रदीप एस मेहता

भारत में गरीबी ग्रामीण क्षेत्रों में बुरी तरह केंद्रित है। यहां ज्यादातर लोगों के पास जमीन नहीं है, और अगर है, तो बहुत कम। अगर जोती गई जमीन के आकार के आधार पर ग्रामीण मजदूर परिवारों को बांटा जाए, तो तकरीबन 59 फीसदी परिवारों के पास जमीन नहीं है, जबकि 28 फीसदी सीमांत किसान हैं, जिनके पास 0.01 से 0.40 हेक्टेयर तक जोतने लायक जमीन है। यानी कुल मिलाकर ऐसे परिवारों का आंकड़ा 87 फीसदी पर पहुंचता है। फिर आखिर 2014 के जमीन अधिग्रहण अध्यादेश में जमीन रखने वाले 13 फीसदी किसानों को लेकर बवाल क्यों मचा हुआ है? यही वजह है कि 2014 के जमीन विधेयक को तैयार करने वालों ने अपने संशोधन में भूमिहीन मजदूरों को नौकरी देने की बात की, न कि किसानों को। ज्यादातर कृषि मजदूर या तो दिहाड़ी पर काम करने वाले हैं या बंटाईदार, जिनकी कमाई भी बेहद कम है। मनरेगा की लोकप्रियता की यह भी एक वजह रही, और नई सरकार ने भी इसे बरकरार रखने का फैसला किया है। ऐसे में यह कहना, कि सरकार व्यापार समर्थक और गरीब विरोधी है, गलत है। आने वाले समय में हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती युवाओं को अवसर उपलब्ध कराने के लिए नए रोजगारों के सृजन की होगी। अगर ऐसा नहीं हुआ, तो यह सवाल चिंता का सबब बनेगा।

पहले की यूपीए सरकार ने 2013 में जो कानून बनाया था, वह क्रियान्वयन से जुड़ी दिक्कतों से घिरा रहा। इसीलिए वर्तमान सरकार इसके प्रावधानों को ज्यादा सरल बनाने पर जोर दे रही है। यूपीए सरकार ने 2013 के लोकलुभावन कानून के जरिये किसानों का वोट पाने के लिए सारी हदें पार कर दी थीं, मगर किसान इससे प्रभावित नहीं हुए। लोग बेतहाशा भ्रष्टाचार, उदासीनता और बेराजगारी से इतने ज्यादा त्रस्त हो चुके थे कि उन्होंने एनडीए सरकार को एकतरफा वोट दिया। इसका मतलब है कि एनडीए सरकार को नए रोजगारों के सृजन और गरीबी के उन्मूलन के मोर्चे पर काम करना ही होगा। विनिर्माण और बुनियादी संरचना के क्षेत्र में सुधार से यह हो सकता है। सरकार पहले ही बीमा, कोयला और खनन जैसे क्षेत्रों में प्रगतिशील कानूनों को पारित कर चुकी है, जिससे विकास के प्रयासों को गति मिल सकेगी।

दरअसल, भारत में भूमि संसाधन की वैसे भी कमी है। तिस पर, जबरन अधिग्रहण, किसानों को कम और देर से होने वाला भुगतान, भूमाफिया और अधिगृहीत जमीन का बेकार पड़े रहना जैसे मुद्दे देश भर में छाए हुए हैं। 2013 में यूपीए सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण कानून

पारित होने से पहले तक हम 1894 के प्रतिगामी जमीन अधिग्रहण अधिनियम से जूझते रहने पर मजबूर थे। कानूनी अड़चनों और लालफीताशाही से होने वाले समय व लागत से जुड़े नुकसानों ने व्यापार के माहौल पर बुरा असर डाला। मगर कांग्रेस शासित राज्यों समेत तमाम राज्य सरकारों की शिकायत है कि 2013 के कानून के तहत जमीन को अधिगृहीत करना खासा मुश्किल काम है। ऐसे हालात में न केवल बहुत-सी परियोजनाएं रुक गईं, बल्कि ऐसे उद्यमियों की भी संख्या बहुत है, जिन्होंने ऐसे कानून से दूर रहने में ही भलाई समझी। एचएसबीसी ग्लोबल रिसर्च का एक अध्ययन बताता है कि सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी (सीएमआईई) के सर्वे के मुताबिक सौ परियोजनाओं में से एक-तिहाई के अटकने की वजह जमीन अधिग्रहण से जुड़ी दिक्कतें हैं। खासकर रेलवे और राजमार्गों से जुड़ी परियोजनाएं इससे अधिक प्रभावित होती हैं। इसका प्रमुख कारण केवल क्षतिपूर्ति नहीं, बल्कि दूसरी प्रक्रियागत वजहें भी हैं।

यूपीए सरकार के भूमि अधिग्रहण कानून में किए गए क्षतिपूर्ति के प्रावधान बेतुके थे। दरअसल, ऐसे मामलों में खरीदार को विक्रेता से बात करके उसे सबसे अच्छा प्रस्ताव देना होता है। सेज पर किए गए कट्स इंटरनेशनल के अध्ययन बताते हैं कि किसान जमीन अच्छे दाम पर बेचने से खुश होते हैं। ऐसे भी मामले हैं, जिनमें अधिगृहीत जमीन वर्षों तक खाली पड़ी रही, जबकि 2013 के भूमि अधिग्रहण कानून में कहा गया था कि अधिग्रहण के पांच साल बाद तक जिस जमीन का उपयोग नहीं किया जाएगा, वह वापस कर दी जाएगी। दिक्कत यह है कि प्रक्रियाओं में लगने वाले समय और मंजूरी में होने वाले विलंब में ही काफी समय निकल जाता है। नए विधेयक में इस प्रावधान में सुधार किया गया है। अब पांच साल या प्रोजेक्ट की शुरुआत के समय में से, जो भी बाद में हो, उसी को गणना में लिया जाएगा।

सहयोगी संघवाद को मजबूत बनाते हुए एनडीए सरकार का यह नया कानून राज्यों को ज्यादा ताकत देता है। बहुत से राज्यों ने पहले ही नई परियोजनाओं की शुरुआत के लिए जमीन अधिग्रहण की अपनी शक्तियों का उपयोग किया है। गुजरात मॉडल से दूसरे राज्यों को भी सीख लेनी चाहिए। आंध्र प्रदेश की नई राजधानी और उत्तर प्रदेश में एक्सप्रेस-वे प्रोजेक्ट इस बात की तस्दीक करते हैं कि अपने प्रोजेक्टों को पूरा करने के लिए राज्य किस तरह कामयाबीपूर्वक जमीन अधिगृहीत कर सकते हैं।

एक सवाल मुझे हैरत में डालता है कि जब नई सरकार तमाम क्षेत्रों में बाजार के सिद्धांतों को अपना रही है, तो वह जमीन के अधिग्रहण में नीलामी प्रक्रिया का उपयोग क्यों नहीं करती? इसके अलावा स्वतंत्र भूमि विनियामक की भी व्यवस्था की जा सकती है, जो सरकार और निहित स्वार्थों से दूरी बनाए रखते हुए जमीन मालिकों को बेहतर सौदा दिलाने में मददगार हो। दरअसल, हमारे देश में दूरदृष्टि और राजनीतिक अड़चनों के बारे में विचार किए बगैर तमाम नीतियां बनती हैं। इससे होता यह है कि छोटे से समूह का फैसला लाखों लोगों की

जिंदगियों पर असर डालता है। ऐसे में, कोशिश इतनी ही होनी चाहिए कि संसाधनों और देश के हालात को ध्यान में रखते हुए ऐसी नीति बनाई जाए, जिससे सभी पक्षों को अधिकतम मुमकिन फायदा मिले।

-लेखक कट्स इंटरनेशनल के सेक्रेटरी-जनरल हैं

This article can also be viewed at: http://www.amarujala.com/